

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182074

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81.6 / 697 / Na
Accession No. G.H. 547

Author तु. स. जगदीश ।

Title साव क पाव । 1953—

This book should be returned on or before the date last marked below.

नाव के पाँव

जगदीश गुप्त



प्रकाशक
विश्वविद्यालय प्रकाशन
गोरखपुर

प्रथम संस्करण
१९५५

Checked 1969

Checked

ढाई रुपये

मुद्रक
राम आसरे कक्कड़
हिन्दी साहित्य प्रेस
प्रयाग

पूज्य 'दादा'—

पंडित माखनलाल चतुर्वेदी

के चरणों में

श्रद्धा सहित

यह संग्रह

कवि का अपनी कविताओं के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहना पाठकों या श्रोताओं के प्रति एक प्रकार से अविश्वास प्रकट करना है; ऐसा न भी हो तो भी वह कविताओं के आस्वादन में साधक कम, बाधक अधिक होता है। इधर तो इसकी परिपाटी ही चल पड़ी है। मैं ऐसा नहीं करूँगा।

इस संग्रह के सम्बन्ध में अवश्य दो एक बातें कहनी हैं —

संग्रह दो खंडों में विभाजित किया गया है 'नाव के पाँव' और 'टूटती लहरें' प्रथम खंड में मेरी सन् १९५१ के बाद की प्रायः सभी कविताएँ संग्रहीत हैं और द्वितीय खंड में इसके पूर्व की कुछ कविताएँ। नयी और पुरानी रचनाओं को एक साथ मिलाकर रखना मुझे उचित नहीं लगा और पिछली कृतियाँ मैं सर्वथा छोड़ भी नहीं सका। कुछ पूर्वाभास देने की दृष्टि से और कुछ शायद मोह के कारण।

मन जितना अधिक शब्द और अर्थ में रमता है उससे अधिक उसे रूप आकार भाते हैं। कम से कम मेरे लिए तो यही सत्य रहा है। नाव के पाँवों की कल्पना भी इसी रूपाकार प्रियता का ही एक परिणाम है। कविताएँ लिखने से अधिक चित्र बनाना रुचता है। इसी स्वभाव ने मुझे इस संग्रह की हर कविता को रूपाकारों में अलंकृत करने के लिए प्रेरित किया। अलंकरण में अर्थ और आकारों की पारस्परिक संगति रखने का यथासम्भव प्रयास किया गया है।

इस संग्रह को इस रूप में प्रस्तुत करने में मुझे अपने निकट के अनेक मित्रों रघुवंश जी, भारती, लक्ष्मीकान्त वर्मा, सर्वेश्वर, रामस्वरूप चतुर्वेदी और सब से अधिक साही से सहयोग मिला है जिसके लिए मैं उन सब का हृदय से आभारी हूँ।

वैशाखी पूर्णिमा
सं० २०१२
मोतीमहल
दारागज,
प्रयाग

Om Prakash

अनुक्रम

नाव के पाँव

१. आस्था	१
२. अव्यक्त चुम्बन	२
३. तुम्हारा आगमन	३
४. अट्टहास	४
५. टूटा शीशा	५
६. नखत की परछाईं	६
७. वर्षा और भाषा	७
८. पुतली	८
९. अतृप्ति	९
१०. पानी गहरा है	१०
११. मध्यस्थ	११
१२. अभिव्यक्ति का संकट	१२
१३. बिखरा हुआ अहम्	१३
१४. अँधेरा और पथरीला दर्द	१५
१५. ज्योति के कण	१६
१६. अक्षर और आकृति	१७
१७. कहा मुना	१९
१८. पहेंली	२०
१९. क्या कहोगे	२३
२०. अधग्वुले द्वार	२५
२१. चेतना की पर्त	२७
२२. तितलो के पंख	२९
२३. प्यार का सपना	३१
२४. एक डाल थी	३३
२५. सिद्धूरो सबेरा	३५
२६. पुरवा के भोंके	३६
२७. लो फिरूँमुनो	३८
२८. गंगा के तट का एक खेत	४०
२९. मेद	४२

३०. एक प्रश्न	४३
३१. पारिजात	४४
३२. चाँदनी और बादल	४५
३३. नाव के पाँव	४६
टूटती लहरें	
३४. ये ज़िन्दगी के रास्ते	४६
३५. सच हम नहीं सच तुम नहीं	५२
३६. लोग कहते हैं	५४
३७. इस बार	५६
३८. गीत	५७
३९. दो मुक्तक	५८
४०. गीत	५९
४१. गीत	६०
४२. अजानी छाँह	६१
४३. गोरी रात	६२
४४. गीत	६३
४५. गीत	६४
४६. गीत	६५
४७. दो वर्षा गीत	६६
४८. गीत	६७
४९. गीत	६८
५०. गीत	६९
५१. चाँदनी और चाँद	७१
५२. आओ	७२
५३. जुन्हाई	७३
५४. दामिनी	७४
५५. तुम्हारा साथ	७५
५६. गीत	७७
५७. टूटती लहरें	७८

गोंव के ढाँव

आरथ

जो कुछ प्राणों में है,
प्यार नहीं,
पीर नहीं,
प्यास नहीं —

जो कुछ आँखों में है,
स्वप्न नहीं,
अश्रु नहीं,
हास नहीं —

जो कुछ अंगों में है,
रूप नहीं,
रक्त नहीं,
माँस नहीं —

जो कुछ शब्दों में है,
अर्थ नहीं,
नाद नहीं,
श्वास नहीं —

उस पर आरथा मेरी ।
उस पर श्रद्धा मेरी ।
उस पर पूजा मेरी ।



शुद्धत पुम्बलं

एक चुम्बन वह
कि जिसमें शीत होठों तक दुलक आये असीम विपाद ;
अधर-मधु के साथ मिश्रित आँसुओं का स्वाद ।

एक चुम्बन वह
कि जिसमें उष्ण श्वासों की उमस नस नस कसे उन्माद,
अधर-मधु के साथ मिश्रित दंशनों का स्वाद ।

किन्तु इनसे भिन्न—बिल्कुल भिन्न—चुम्बन एक
तन में निहित, मन में निहित,
आँसू में, नयन में निहित,
सब आकर्षणों का मूल,
पीड़ा से न जो विगलित,
न जो उन्माद से आरक्त,
चिर अव्यक्त,
जो पहुँचा नहीं सुकुमार रागारुण अधरदल तक,
भोर के नीहार-सपने सा
उलभ कर रह गया अध-मुक्त पलकों बीच ।

उस जैसा नहीं कुछ और—
जो दे झुलसता अस्तित्व भीगे रपंदनों से सींच ।



तुम्हारा आगमन

यह—तुम नहीं आये
लगा जैसे सुरभि ने
स्निग्ध प्राणों पर
जुही के, इन्द्रवेला के, कमल के,
ओस भीगे, पारिजाती फूल बरसाये ।

पकी झुकती बालियों वाले
गीत गाते लहलहाते खेत की—
सुनसान ऊँची मेड़ पर
श्वेत स्लेटी सारसों के एक जोड़े ने
गेरुई दो गरदनें नीचे झुकायीं—पंख फैलाये ।

झुटपुटे में साँझ के चूनर पहन
किसी नत शिर नव वधू ने
अरुण मेंहदी रचे हाथों से जला—
नील यमुना की लहरियों पर
पात में रख—मौन, घी के दीप तैराये ।

हृदय को, मन को, नयन को
इस तरह भाये ।
सच,
बहुत दिन बाद तुम आये ।



अट्टहास

पागल हो जाऊँगा,
हँसो नहीं,
अपनों पर क्या कोई ऐसे भी हँसता है ।
मेरे मन को रह रह कर संशय डसता है ।
बंद करो अट्टहास
अट्टहास बन्द करो
इसमें छुटपटा रहीं आँसू की धारें हैं,
इसमें आत्मा का हत्या का चीत्कारें हैं ।

बंद करो
इस सुने रव की भैरवता को मंद करो
माना हमने अपनी आत्मा को बेच दिया,
अपने विश्वासों का वध अपने आप किया,
श्वासों की पूजा प्रतिमाओं को तोड़ दिया ।
जीवन को पापों से, शापों से बाँध लिया ।
फिर भी तुम हँसो नहीं
मेरे अंतर के सब बाँध टूट जायेंगे ।
परिचय के क्षितिज और दूर छूट जायेंगे ।

रुको रुको !
पंजों में कोई यो प्राणों को कसता है ।
मेरे मन को रह रह कर संशय डसता है ।
अपनों पर क्या कोई ऐसे भी हँसता है ।
पागल हो जाऊँगा—
हँसो नहीं ।



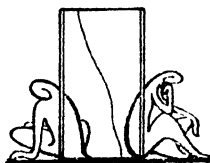
टूटा शीशा

हृदय में तुमको लिये चुप ही रहा, मैंने—
न कुछ सोचा न कुछ मुख से कहा मैंने,
रनेहवश सब कुछ सहा मैंने,

किन्तु था वह सभी अत्याचार,
तुम समझ बैठे उसे अधिकार—
मेरे मौन रहने से ।

था हमारा शुभ्र शीशे की तरह जो पारदर्शी प्यार,
पड़ गयी—पड़ती गयी उसमें अपार दरार ।
जो समर्पण था सहज—वह बन गया संभार ।

अपशकुन है मीत ! शीशे का दरक जाना ।
कभी मानोगे—अगर अब तक नहीं माना ।



नखत की परछाँई

अँकुरती सी क्यारियों में धान की,
राशि, वर्षा के बिखरते दान की,
हुई संचित

उसी संचित राशि में सीमंत सी
फि ल मि ला ई

क्षीण परछाँई

फटे टूटे बादलों के बीच से

भाँकते नन्हें नखत की,

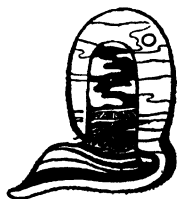
नखत की वह क्षीण परछाँई

छू गई हर एक रग जी की ।

युग युगों से हृदय की सुकुमार पतों में बनी थी जो

वह रजत सी रात पृनों की

लग उठी फीकी ।



वर्षा और भाषा

वर्षा की बूँदों से शब्द शब्द घुलता है ।
बूँदों की वर्षा से नया अर्थ खुलता है ।
भावों के बादल घिर आते हैं
घिर घिर कर छाते हैं ।
बूँदों की भाषा में सब कुछ कह जाते हैं
रिमझिम रिमझिम अक्षर अक्षर, रस घुलता है ।
भादों की कारी अंधियारी में
रह रह कर
बिजली सी उक्ति चमक जाती है ।
वाणी की सोने सी देह दमक जाती है ।
वर्षा की बूँदों में
बूँदों की वर्षा में
शब्द अर्थ मिलते हैं,
जीवन सब तुलता है ।



पुतली

नाश आं निर्माण के दोनों ध्रुवों के बीच,
सारी ज़िन्दगी तिरती
जागरण में, स्वप्न में, सुख दुख सँजोये—
टीक पुतली की तरह फिरती

चिर-शयन बन,
शीश पर जब मृत्यु आ घिरती,
फिर नहीं फिरती, नहीं तिरती ।



उत्पत्ति

तन ने सम्पर्कों की सारी सीमाओं को पार किया,
पर न हुआ तृप्त हिया ।
फूलों सी बाँहों में,
पलकों की छाँहों में,
सपने की तरह जिया,
पर न हुआ तृप्त हिया ।
साँपों सी लहराती,
मन की काली छायाएँ देखीं ।
तप्त वासनाओं की,
भूखी नंगी कायाएँ देखीं ।
अधरों में, आँसुओं में
आकर्षण आकर्षण,
आसिचन मधुवर्षण,
सब कुछ रसहीन लगा,
कुछ था प्राणों में जो नहीं जगा,
जितनी ही प्यास बढ़ी, उतना रस और पिया
पर न हुआ तृप्त हिया ।

लगता जैसे सब कुछ केवल है तृपा,
तृप्ति जिसमें कण मात्र नहीं ।
केवल गति, केवल गति—
रुकना क्षण मात्र नहीं ।

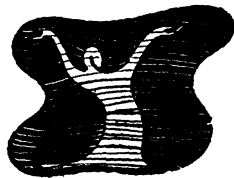


पानी गहरा है

पानी गहरा है पर थाह नहीं पाता हूँ ।
लहरों में अनचाहे लहर लहर जाता हूँ ।

कोलाहल धूल भरा तट कव का छोड़ चुका ।
मन की दुर्बलताओं के बन्धन तोड़ चुका ।
पर जाने क्या है—
जब गहरे में चलने को होता हूँ
ठहर ठहर जाता हूँ ।
पानी गहरा है पर थाह नहीं पाता हूँ ।

झिलमिल जल की सतहों बीच सत्य दीख रहा ।
उसमें घुल जाने को ।
अपने ही पाने को ।
साँस साँस तड़प रही-रोम रोम चीख रहा ।
माना यह तत्वों की, मिट्टी की, जल की है ।
मन की तुलना में पर देह बहुत हलकी है ।
इसको तट ही प्रिय है, चाह नहीं तल की है ।
इसके निर्मम हलकेपन से ही बँधा बँधा,
जल के आवृतन में छहर छहर जाता हूँ ।
पानी गहरा है पर थाह नहीं पाता हूँ ।



मध्यस्थ

जीभ की मृदु नोक को ऊपर उठा
जब दाढ़ के तीखे कगारे बार बार टटोलता हूँ मैं—
और जब सहसा 'कैनाइन टीथ' छू जाते
सिहर जाती देह
निस्संदेह
लगता मुझे जैसे अभी तक पशु ही बना हूँ मैं ।

किन्तु जब पलके झुका, दृग मूँद
भाँकता हूँ हृदय के उस पार,
मन के गहन लोकों में—
तुम्हारे स्नेह के आलोक से पूरित,

उधर जाते अनेकों द्वार—अनगिन द्वार
जिनकी आड़ से झाड़ें तुम्हारी भाँकती,
तिरती
चिखरती
फँस जाती ज्योति के उजले कुहासे सी

चेतना की उस मधुर स्वप्निल कुहा में
मुझे लगता देवता हूँ मैं ।
तुम बनो मध्यस्थ
बतलाओ कि क्या हूँ मैं ।



अभिव्यक्ति का संकट

बहुत ही हलका लगेगा
'मैं तुम्हारा और तुम मेरे',—कहूँ तो,
और यदि यह कहूँ
'मेरे बीच तुम हो, मैं तुम्हारे बीच हूँ'
तो भी नहीं यह कथन इच्छित अर्थ देगा ।

'लग रहा ऐसा कि जैसे
हैं जहाँ तक भी हृदय का, चेतना का, प्राण का विस्तार,
उस सब में तुम्हीं तुम हो —
तुम्हीं पर है टिका सब, दूसरा कोई नहीं आधार,
यह दुख-दर्द, हर्ष-विपाद, चिंता, जय-पराजय,
स्नेह, ममता, मोह, करुणा, ग्लानि और भय,
तुम्हीं से उत्पन्न होते तुम्हीं में लय'
भावमय यह कथ्य,
इसमें है बहुत कुछ तथ्य—
पर अतिरंजना भी है ।

'जिस तरह कुछ भी नहीं है भिन्न मेरा—स्वयम् से,
तुमसे, तथा तुम पर समर्पित अहम् से,
भिन्नता होगी न वैसे ही तुम्हारे पास'
ऐसा ही मुझे विश्वास,
शायद इस तरह से कह सका होऊँ, हृदय की बात
पर क्या सही है यह—कह सका मैं ठीक पूरी बात ?



बिखरा हुआ अहम्

मैं बिखर गया हूँ
अपने ही चारों ओर ।
मेरा एक अंश—सामने के नीम की
नंगी टहनियों में लगी उदास पीली
पत्तियों के बीच उलझ गया है—
और उन्ही के साथ
पतझर के रूखे किन्तु खुमारी भरे
झोंकों की चोट से—एक एक कर,
नाचता-गिरता-लहरता थिरता
जटाओं जैसी भूरी सूखी धूल भरी घास पर,
उतर रहा है—उतर रहा है ।

मेरा दूसरा अंश—वर्षा के बाद के बचे उन
खोये-भटके-हलके-दुधियारे बादलों के साथ
आकाश में डोल रहा है,
जिनमें न जल है न जलन, न ओले न गलन,
कभी कभी सियाह चीलें मँडराती हुई
इधर से उधर निकल जाती हैं
किन्तु वे ठहरते नहीं—रुकते नहीं ।

मेरा एक तरल अंश—गंगा की लहरों पर दिनरात तिरता है ।
डाँडों के साथ साथ उठता है, गिरता है ।
उनकी कोरों से टपकती वृद्धों सा,
वृत्त बनाता हुआ—फँल जाता है—फँल जाता है ।

इन सबसे अलग एक गहरा अंश—मेरा ही
चाँद के सीने के उन दागों में जा छिपा है
जिन्हें चाँदनी रूपजल से धो धो कर हार गयी ।
पर जो अमिट थे—अमिट हैं;
मेरे इन सब बिखरे बिखरे अंशों को
कौन सँजोये
मुझे कौन पूरा करे,
पीली पत्तियों को फैलते जलवृत्तों में कौन बाँधे
वह जायेंगी वे ।
काले दागों पर बहके सफेद बादलों को कौन साधे,
ढक जायेगा चाँद, खो जायेगी चीलें ।



अंधेरा और पथरीला दर्द

रुको मैं तुम्हें वह सब दिखाऊँगा जो मैंने देखा है
स्वयं अंधेरा हूँ तो भी ज्योतिदान दे सकता हूँ

ऊपर निहारो,

अनन्त आलोक में तैरते हुए स्वप्न के दूक जैसा स्वर्गलोक है
जिसमें देवताओं के मुकुट

और

अप्सराओं के केयूर झलकते हैं

आँखें झुकाओ ,

दूध जैसी चाँदनी में डूबा डूबा

उनींदी अलसाहट सा अंतरिक्ष है

जिसमें सैकड़ों सूरज और चाँद झिलमिलाते हैं

निगाहें नीची करो,

धुएँ की स्याह चादर से ढकी विजड़ित सी धरती है

जिस पर मटमैली छायाएँ घूम रही हैं,

अपना अपना दर्द लिए मीत की परछाईं सी

अब नजर फिर ऊपर करो—धीरे—धीरे—

धरती से अन्तरिक्ष और अन्तरिक्ष से स्वर्ग की ओर

पर यह क्या तुम तो स्वयं विजड़ित हो गये

उठाओ दृष्टि,

दृष्टि ऊपर उठाओ,

नहीं उठाते,

नहीं उठा सकते,

अफसोस कि तुम्हारी भी आँखें पथरी गयीं

धरती के पथरीले दर्द को छूकर

मैं तो कब का अंधा हो चुका हूँ

लोग मुझे अंधेरा कहते हैं ।



ज्योति के कण

दीप पूरी तरह जलने भी नहीं पाया
कि जो भी चीज थी डूबी हुई
गहरे अँधेरे में
उभर आयी
तमस के निविड़ बंधन से अचानक
खुल गये आकार
निज अरितत्व को देते हुए नव अर्थ
ये हैं कुर्सेयाँ, यह मेज़, पेपरवेट, यह दीवार,
छायाएँ गले मिलने लगीं
पाकर नया विस्तार,
जैसे किसी शिल्पी ने दिया हो रूप रूप सँवार,
लगता मुझे तिमिराच्छन्न मन में छिपी
हर अनुभूति को नव रूप, नूतन अर्थ,
देने के लिए भी चाहिए
कुछ ज्योति के कण;
स्नेह के, संघर्ष के क्षण;
दे सको तो दो।



अक्षर और आकृति

क्या बताऊँ,
था न जाने किस जगह मन
जो परत खोला किया हरबार कागज मोड़कर ।
फिर लहर सी आयी अचानक
लिख दिये कुछ नाम बेसोचे विचारे
हाशिये के बीच में, कुछ हाशिये को छोड़कर ।
क्षरण भर रुका पेन—
और फिर कुछ अधबने अक्षर सँवारे;
पाइयों के शीश को ऊपर उठाया,
मात्राओं के अनूपुर चरण अनुरंजित किये,
नूपुर पिन्हाये,
सभी सीमाएँ मिलायीं,
नयी रेखाएँ बनार्यीं
यहाँ तक
वे नाम सारे खोगये
उन लकीरों के जाल में निःशब्द
अक्षर सो गये
सहसा उभर आई उन्ही को जोड़कर,
आकृति नयी
हर एक रेखा उसी में घुलमिल गयी ।
कुछ नाम अलकों में समाये
और कुछ अक्षर दृगों में बस गये;
कुछ चिह्न उलझी बरुनियों में कस गये;

नाव के पाँव

कुछ छिप गये अंकित अधर की ओट में—
चुपचाप;
प्राणों के अनेकों द्वार
करती पार
आयी उभर अपने आप
खोई हुई सी पहचान ।



छासुना

जो कुछ भी मैने कहा वही क्या था मन में ?
जो कुछ था मन में ठीक वही क्या कह पाया ?
मैने भरसक कोशिश की लेकिन सही सही—
शब्दों में भावों का प्रनाह कब वह पाया ?

भाना मेरी बातों से चोट लगी तुमको,
पर क्या यह मैने चाहा था, ईसाफ़ करो ।
फिर भी मेरे ही कारण तुमको दर्द हुआ,
जो कुछ भी मैने कहा सुना, सब माफ़ करो ।



पहेली

तुम्हें जाने,
अगर इस बार बतला दो
हमारी मुट्टियों में है छिपी क्या चीज़ ।

ऊँ हूँ ! क्यों बतायें हम,
छिपाने में पुरुष होते नहीं हैं कम
किसी से भी ।

न बतलाओ नहीं मालूम है तो,
यों किसी को दोष देने से
मिलेगा क्या ।

मिलेगा क्या ?
यही तो पृच्छना था
हाँ ! सुनो यदि हम बता दें
तो मिलेगा क्या ।

किसी के प्रश्न करने पर
नया सा प्रश्न कर देना—
नहीं
अच्छी नहीं यह बात
पहले दो हमारे प्रश्न का उत्तर
हमारी मुट्टियों में है छिपी क्या चीज़
बतलाओ ।

बताऊँ ?

हाँ ।

मुझे झुठला रहे यूँ ही
न होगा कुछ
दिखादो खोलकर मुट्टी
नहीं तो खुद बता दो ना—

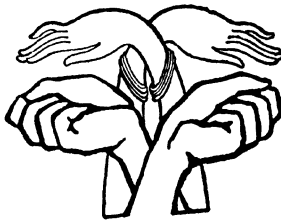
बताऊँ ? सुन सकोगे ?

है छिपी इन मुट्टियों के बीच में
मजबूरियाँ — लाचारियाँ—असमर्थताएँ
एक हो जिसको बताएँ
मुट्टियाँ यह हैं बनी फौलाद की
सब को समेटे
युग युगों से बंद हैं अब तक
नहीं तो चटचटाकर टूट जाती उँगलियाँ—
सब दर्द छितराता
तुम्हें मालूम हो जाता
कि मैं सच कह रहा हूँ
कुछ हँसो की बात है इसमें नहीं—
जो है हकीकत है, हँसो मत तुम

अगर अब भी न हो विश्वास
खिच आओ ज़रा इन मुट्टियों के पास
सुन लो दर्द की आवाज़
शायद है इन्हीं में ज़िन्दगी का राज
रखना सिर्फ़ अपने तक इसे तुम

नाब के पाँव

किसी दिन काश खुल जातीं
कहीं यह मुट्टियाँ मेरी,
लगा मजबूरियों को आग
ले आता तुम्हें मैं खींच अपनी ज़िन्दगी के पास
श्वासों में उलझते श्वास,
तुम हो सके तो खोल दो यह मुट्टियाँ मेरी
बढ़ाओ हाथ—उठो—मत करो देरी
मगर यह क्या—तुम्हारे भर गये लोचन
कमल कोमल उँगलियाँ मुड़ चलीं बेवस
अँगूठे भिंच गये सहसा
तुम्हारी मुट्टियाँ भी बाँध दी आखिर
इन्हीं मजबूरियों ने—बस
मुझे अब कुछ नहीं कहना
कहूँ भी क्या
कि जब मजबूरियों के बीच ही रहना ।



क्या कहोगे ?

क्या कहोगे ?

भर रहा है नीर दृष्टी नाव में—

यह जान कर भी

उसी पर आँखें गड़ाये

संधि से आता हुआ जल देखता सा

डूबने की कल्पना से मुक्त

अपने आप में डूबा

आडिग—निश्चेष्ट जो बैठा हुआ हो छोड़ कर पतवार

खेवनहार

उसको क्या कहोगे ?

नाव को मँझधार तक वह साथ लाया—

किन्तु यदि उस पार जाने के प्रथम ही

नाव का कोमल कलेवर

नीर के आवेग के आगे हुआ लाचार

तो क्यों मानले वह इसे अपनी हार

आँर ऐसे में अगर कुछ सोच कर वह

छोड़ बैठा हो स्वयं पतवार

उसको क्या कहोगे ?

क्या कहोगे यदि कहे वह

देह मेरी नाव

मेरे बाहु ही हैं डाँड

मेरा शीश ही पतवार

अपनी शक्ति से ही चीरकर मँझधार को

होना मुझे है पार

नाव के पाँव

शीघ्रता क्या ?

तैर लूँगा

किन्तु इतनी दूर तक इस नाव को मैं साथ लाया

डूब जाने दूँ इसे पूरी तरह

लूँ देख इसके हृदय पर यह नीर कैसे

कर रहा अधिकार

कैसे घेर कर मँझधार का आवेग

इसको कर रहा लाचार

देखने को फिर नहीं यह सब मिलेगा

देख तो लूँ

फिर भुजाओं के सहारे तैर लूँगा

डूब भी जाना पड़े यह देखने के बाद

तो होगा नहीं अफ़सोस,

डूबा जिस तरह साथी,

नहीं उस भौँति मैं डूबा

चलाये हाथ, लहरों से लड़ा

मानी नहीं मैंने पराजय अंत तक

विश्वास अपने पर किया

तो क्या हुआ डूबा अगर

क्या पार जाने से इसे कम कहेगा कोई ?

सच बताओ,

डूबती सी नाव के निश्चेष्ट खेवनहार की

इस तरह की बात सुनकर क्या कहोगे ?



अधखुले द्वार

अनजाने मैंने ही खोली होगी साँकल
खुल गये हवा के झोंके से होंगे किवाड़
लघु एक चमकता तारा झलका और दिखा—
आकाश-खंड अधखुले द्वार की लिये आड़ ।
वह नभ का टुकड़ा खुली हवा में डूबा सा
तम भरा मगर तारों की किरनों से उजला ।
आँखों आँखों से होकर तैर गया सीधे—
मन तक जिसमें था रुँधा हुआ जीवन पिछला ।
जाने कितना हो गया समय दरवाजों की
मैंने अपने ही आप बन्द कर रक्खा था ।
कमरे के भीतर की दुनिया तक सीमित हो
मैं ही अपने से कहा किया अपनी गाथा ।
उस गाथा को अपने ही रचे अँधेरे में
देता रहता था झूम झूम नित नये छन्द ।
थीं आसमान को भूल चुकी आँखें बिल्कुल
अच्छे लगने लग गये उन्हे थे द्वार बन्द ।
पर आज अचानक आसमान के टुकड़े ने
कमरे के भीतर राह बना ही ली आखिर ।
मेरे मन ने मुझको इतना मजबूर किया
उठ कर मैंने सब खोल दिये दरवाजे फिर ।
लेकिन सब दरवाजों के खुल जाने पर भी
जाने क्यों यह आकाश साफ़ दीखता नहीं ।
नजरो के आगे आकर छायी जाती है
मन के भीतर की रुँधी जिन्दगी कहीं कहीं ।

नाव के पाँव

बाहर के परदे दूर हुए फिर भी मन के
भीतर के परदे सब ज्यों के त्यों कायम हैं ।
तारों की इतनी घनी रोशनी व्यर्थ बना
ये बढ़ा रहे अपने तम से नभ का तम हैं ।

बाहर का चंदा आसमान पर चढ़ आया
लेकिन भीतर चाँदनी अभी तक खिली नहीं ।
सारे दरवाजे खोल दिये मैंने फिर भी
सच मानो मेरे मन को राहत मिली नहीं ।



चेतना की पर्त

जी रहे हम चेतना की एक पतली पर्त में
जी रहे हम ज़िन्दगी की एक भोली शर्त में
चेतना की पर्त यह पतली, बहुत पतली
कि जैसे एक कागज़
एक सीमा
भृत और भविष्य दोनों को विभाजित कर रही सी
जो चुका है बीत बीतेगा अभी जो
बीच में इसके बहुत पतली जगह है
ठीक ज्यामिति की बताई
एक रेखा
एक सेक्शन
डोलता है उसी में मन ।

चेतना की पर्त के पीछे छिपी है मौत
या कोई आलौकिक जोत
कौन जाने—
किन्तु यह कटु सत्य है कोई इसे माने न माने
चेतना की पर्त है पतली बहुत
विस्तृत भले ही हो युगों तक
शुभ्र शैशव की मधुर क्लृप्तियाँ
टूटे खिलौने
अधखिले कामार्य के सपने सलौने
मुग्ध तरुणाई, दिवस रस स्निग्ध
रातें अलस मृदु स्मृतियों भरीं दुख-दग्ध
चिरह-मिलन, उसास-आँसु, हास-चुम्बन

नाव के पाँव

अनगिनत छन

ओस-भीगी रंग-भीनी सुबह की मनुहार

दोपहर की दौड़धूप अपार

फूली हुई माथे की नसें

सामने की भाप उठती प्यालियों की चाय सी

शाम की गरमागरम बहसें

और पहरों गूँजने वाली हँसो

सब कहाँ है ?

चेतना की इसी पतली पर्त में—

जी रहे हम जिन्दगी की ख़ुबसूरत शर्त में ।



तितली के पंख

इन्द्रधनुष के टुकड़ों जैसे
तितली के रँगभरे चटुल पंखों की सुन्दरता से बिँधकर
ओ बेसुध हो जाने वालो !
तितली केवल पंख नहीं है !
तितली में है जान एक नन्हीं प्यारी सी
जो उड़ते उड़ते थक जाती
एक फूल पर रुकते रुकते तैर और फूलों तक जाती
जो पराग मे प्रान पोसती
जो मरंद से हृदय जुड़ाती ।
फिर भी जिसकी भूख न मिटती
फिर भी जिसकी प्यास न जाती ।
उसके दो रँगभीने पर है ।
माना वे बेहद सुन्दर है ।
फिर भी तितली पंख नही है ।
तितली केवल पंख नहीं है ।

पल भर सोचो
अगर किसी अनजान चोट से
यह तितली घायल हो जाये
और टूट कर दोनों नाजुक पर गिर जायें ।
तो क्या होगा ?
रंग रूप की रेखाओं से रचे रँगीले
लाल सुनहले नीले पीले
इन्द्रधनुष के टुकड़ों जैसे
पंख बिचारे

नाव के पाँव

फिर आपस में जुड़ न सकेंगे
प्रातः पवन की सुरभि लुटाती हिलकोरों पर
थिरक थिरक कर उड़ न सकेंगे !

और लगेगा

यह तितली भी कीड़ा है बस
वैसा ही जैसे धरती पर बहुत रेंगते

सने धूलसे

जो आये दिन घायल होते
कभी किसी की ठोकर खाकर
कभी किसी की क्रूर भूल से

यह तितली के पंख रँगीले

सिर्फ सत्य का एक रूप हैं

वह भी ऐसा जो छूने से ही मिट जाये

उँगली के पोरों से पूछो

कभी जिन्होंने कहीं छुए हों तितली के पर

छूते छूते हाथों में रंगीन चित्र सब सन जायेंगे

बिखर न जाने कहीं सुनहले नीले पीले कन जायेंगे

बस ढाँचा ही शेष रहेगा

बने रहेंगे रंग न वैसे

और न वैसा वेश रहेगा

इसीलिये तो मैं कहता हूँ

थिरक थिरक कर उड़ने वाली

प्रातः पवन की सुरभि लुटाती साँसों के संग मुड़ने वाली

चटुल रँगीली

नीली पीली

तितली केवल पंख नहीं है ।



प्यार का अपना

बड़े अंधेरे गंगा के उस पार घूम कर आया
खोया खोया चूर चूर सा माथे पर दुख छाया
गेहूँ के उस हरे खेत से कच्ची बाली एक
बड़े प्यार से तोड़ी

मोड़ी—

चुम्बन लिए अनेक

हरे दूधिया दाने कुछ दाँतों के बीच दबाकर
कुतर लिये—

कुछ मसल उँगलियों से डाले अलसाकर
घर आते ही तकिये पर सर रख कर लगा भुलाने—
वह जो कुछ मन पर घिर आया था जाने अनजाने
थकी देह थी—पलक मुँद गये अलसाहट बढ़ आया
लगी रिझाने किसी सलौने सपने की परछाईं
जलते माथे को नन्हीं सी ठंडी लहर हवा की
सहसा आयी और छू गयी ज्यों छाया ममता की
लगा मुझे ढक लिया किसी ने जैसे निज आँचल से
फिर वह नन्हीं लहर खो गयी घने स्नेह के छल से
जाने क्यों रह रह कर अंतर लगा भीगने मेरा
वह नन्हीं सी लहर हवा की पुनः कर गयी फेरा
फिर आयी फिर गयी लहर शांतल ज्यों हिम की रेखा
रहा उमड़ता प्यार न मैंने पलक खोलकर देखा
इतने में कुछ चुभा देह में बहुत नुकांला तीखा
सुनी फड़फड़ाहट कानों ने, पंजों सा कुछ दीखा
मैं था अधउधरी पलकें थीं मलगाजी सी शैया
फुदक रही थी रह रह उस पर नन्हीं सी गोरियाँ।

नाब के पाँव

लगा रह गया होगा मेरे मुँह में कोई दाना
इसीलिए माथे तक उसका था वह आना जाना
स्नेह प्यार आँचल की छाया वह सब का सब भ्रम था
केवल गौरैया के दाने के पाने का क्रम था
नन्हीं ठंडी लहर नहीं थी डेनो का फुरफुर था
दाना था या नई पौध के उंगने का अंकुर था
ममता थी या पंखी दाना खोज रहा था अपना
पलक मुँदे थे किन्तु चुका था टूट प्यार का सपना



एक डाल थी

एक डाल थी—

जिसमें कोई पात नहीं था

फूल नहीं था:

लम्बी सी वेडाल टहनिया

टेढ़ी-मेढ़ी—

उनमें भी बेहद रूखापन

आर हृदय के पार बेधने वाला कोई शूल नहीं था ।

मृनापन बन कर मन के प्रतिफल चुभ गया,

तो भी मुझ से डाल न छूटी ।

कुछ दिन वांते

वही डाल थी—

निरं फूल थे

निरं शूल थे

हर टहनी में नयी चमक थी—

नयी नयी कलियां

हरियाली विखरते अनागत पात थे ।

जाने क्यों मुझमें छुप छुपकर

आपम में कर रहे बात थे ।

मैंने चाहा सब अनचाहे शूल तोड़ दूँ

पर हाथों में टहनी का हर शूल चुभ गया

तो भी मुझमें डाल न छूटी ।

कुछ दिन वांते आर

डाल भी वही बनी थी—

लेकिन कोई शूल नहीं था

पात नहीं था

नाथ के पाँव

टहनी टहनी पर अनगिन फूल ही फूल थे

खिले अर्धखिले कोमल कोमल

मैने चाहा सब मनचाहे फूल तोड़ लूँ

पर जाने क्यों—

काँटों से भी तीखा बन कर डाली का हर फूल चुभ गया

और एक ही क्षण में मुझमें डाल लुट गयी ।



सिंदूरी अबेरा

पाँ फटी,
चुपचाप काले स्याह भँवराले अँधेरे की घनी चादर हटी ।
मखमूर आँखों में गयी भर जोत
जब फूटा सुनहला सोत
सिंदूरी सवेग बादलों का सँकड़ों स्लेटी तहां का
चीरकर इस भाँति उग आया
कि जैसे स्नेह से भर जाय मन की हर सतह
हर वासना जैसे सुहागन वन उठे
पुर जाय हर सीमेंत कुंकुम की सुलगती उर्मियों से धंतरह ।
चुपचाप काले स्याह भँवराले अँधेरे की घनी चादर हटा,
पाँ फटी ।



पुरवा के झोंके

तेज़ है झोंके
 हवाओं के
 कृत्रु हुआ पंमा-
 कि महसा
 वज उठे मव तार दर्दीली शिराओं के।
 मगन अल्हड़ वावले झोंके
 झूमती पुरवा हवाओं के ।।
 वह रहीं झंझा, झंझारे निर्भरों में झर रहे
 उमड़ी प्रभंजन की सहस्रधारा
 हर थपेड़ा तोड़ता सा जा रहा तन और मन मारा
 वर्ष मास दिवस विवश है,
 किसी अनजानी दिशा में समय का हर टुक उड़ता जा रहा:
 'अखबार के बेकार टुकड़ों का तरह ही उड़ रहे विश्वास
 हलका पड़ रहा अस्तित्व
 तिनकों की तरह लाचार भटके जा रहे निश्वास
 जीवन मृक उड़ता जा रहा
 जाने कहाँ किस और
 हृदय का हर एक कोना सनसनाहट में रहा भर
 और मन की खिड़कियों का हर किवाड़ा-
 फड़फड़ाता पंख जैसा
 किसी हलके क्षण बादल सा
 कल्पना के शांश पर आँचल नहीं टिकता
 मँद रहे से पलक आँखों में भरी उन्माद की मिक्तता
 दूब सी झुक कर निगाहें हो रही दुहरी:
 खड़खड़ाती पत्तियों सी वामनाओं के
 कँटीले अंग निखरे हैं,

हर इगदा डगमगाया
हर सपन के बाल बिखरें है ।
कहीं कोई भी नहीं क्या
जो तनिक इन पागलों के शोर को रोकें !
तेज हैं भोंके हवाओं के ।
बावली पुरवा हवाओं के ।



लो फिर सुनो

लो फिर सुनो, मुझ को नहीं यह पथ-प्रदर्शन चाहिए
भटके हुए इंसान की पग-धूलि मेरे शीश पर ।

हर पथिक का कन्धा पकड़
भकभोर कर
पृच्छे बिना ही कह रहे तुम जोर से
ईतहास की देकर दुहाई
एक ही पथ है
यही पथ है
इमा से लक्ष्य तक जाना तुम्हें होगा ।
नहीं तो गालियों या गोलियों खाना तुम्हें होगा ।
भगर सुन लो समझ लो
मच पथिक यकमों नहीं होते ।
सर्भी तो आदमाँ का शकल मे हँवां नहीं होते,
कि जिनको हर कदम पर हाँकनेवाला जरूरत हो ।
नहीं, मुझ को नहीं यह पथ-प्रदर्शन चाहिए
भटके हुए इंसान की पग-धूलि मेरे शीश पर ।

अजानी मंजिलों का राहगीरों को नहीं तुम भेद देते हो ।
जकड़ कर कल्पना, उनके पगों की मुक्ति को हाँ खीन लेते हो ।
नहीं मालूम तुमको
है कठिन कितना
बनाये पन्थ को तजकर
हृदय के बीच से उठते हुए खर के सङ्घारे
मुक्त चल पड़ना
नये आलोक-पथ की सोज में
गिरि-गह्वरों से,

कंकड़ों से, पत्थरों से,
भाड़ियों से, भँकटों से, रात-दिन लड़ना ।

भटकने के लिए भी एक साहस चाहिए
जो भी नये पथ आज तक खोजे गये
भटके हुए इन्सान की हाँ देन है
मे इसलिये ही पूजता हूँ वे चरण
जो भटकते हैं रात दिन
निज भाल पर रूमाल सा बांधे भरण
लो फिर सुनो मुझको नहीं यह पथ-प्रदर्शन चाहिए
भटके हुए इन्सान की पगधूलि मेरे रीश पर ।

न यदि लोहू बहे, धरती न हो यदि लाल
तो क्या पथ नहीं होगा ?
नया आलोक लाने के लिए
क्या अग्रसर जनरथ नहीं होगा ?



गंगा के तट का एक खेत.

गंगा के तट का एक खेत,
बहिया आर्या, बह गया अधपकी भुकरती वालों के समेत ।
जाने कितने, किस ठौर, किधर, किस साइत में बरसे बादल,
लहरे रह-रह बढ़ चली, भर गया डगर-डगर में जल ही जल ।
हँसिया-खुरपी का श्रम डूबा,
उगने-पकने का क्रम डूबा,
डूबा रखवारे की कुटिया
जिसमें संझा को दिया जला ज्ञानी था केवट की बिटिया ।
बरतन-भाँड़े, कपड़े-लत्ते,
सब भीज गये, बह गये गंज के ईंधन के मुखे पत्ते ।
हर बहा, बहे हरहा गोमू,
गे रही दुलरुआ की जोमू,
जिसका सहेट मिट गया —
आँर जो था गिरधरवा की चहेत,
गंगा के तट का एक खेत,
बहिया आर्या, बह गया अधपकी भुकरती वालों के समेत ।

कुछ घटी बाद, पाँधों के भीजे मिर दामे,
धरती निकली, ले रहे धूप आकर कञ्चुप ममभे-माखे,
बह चली अरे फिर पुगैया,
फिर छम-छम करती बढी लहरियाँ, खुले पाल, डोला नैया;
मटमैले जल में परझाईं
धुंधली-धुंधली बनती-मिटती, लहगती माँपों की नाईं ।
फिर घटा नीर, फिर तट उभरे,
कंकड़ उभरे, पत्थर उभरे, टूटे-फूटे कुछ घट उभरे,
चिकनी मिट्टी में मने पाँव-
उनके, जो जाने पार गाँव,

पैरों के रह जाते निशान धँस कर धरती में ठाँव ठाँव ।
हो गयी धूप कुछ कड़ी और,
जल की बिछड़न से हिया दरकने लगा पंक का ठौर-ठौर ।
चाँदनी रात में कर जाता जादू, सपनों में धुलारेत ।
गंगा के तट का एक खेत,
बहिया आई, बह गया अधपकी भुकता बालों के समेत ।



भेद

भेद है जो हंस में, बक में,
सटे उलटे लटकते चिमगादड़ों में—
आर चातक में,
स्नेह की मृदु धड़कनों में—
आर उर की रुग्ण धक-धक में,
काँच के वेडॉल टुकड़ों आर हीरो में,
वही अन्तर है
किसी कवि की कमी रस में बसी
नव अर्थपूरित पंक्तियों में—
आँ, अर्काव की अनगढ़ी
रसहीन बेमानी लकीरों में ।



२७७

यह हँसी-आँसू, उदासी-मुरझाहट,
क्या सभी अवमान के आते पदों की क्षीण आहट ?
सामने है मौत की काली, खड़ी दीवार,
क्या इसी भय से उमजता हर हृदय में प्यार ?



पारिजात

पारिजात,
हरित नील आँखों सा पात-पात ।
दूबों सी झुकी-झुकी पलकों पर,
किरणों की गूली-गूली अलकों पर,
धवल-अरुण चुम्बन से फूलों की बरसात ।
हरित-नील आँखों सा पात- पात,
पारिजात ।

बंदन की रेखा पर चंदन की पंग्वरी,
चुपके से आँचल में ढलने की आतुरी,
प्राणों पर बरस रहे चुम्बन से फूल,
डालों की बाँहों के आसपास,
अटक रहे गंध के दुकूल ।
रवर्गिक तरु : सपनों की खिली पाँत ।
हरित-नील आँखों सा पात-पात,
पारिजात ।



चाँदनी और बादल

चाँद का प्याला कहीं उलटा पड़ा होगा,
बादलों ने चाँदनी पी ली ।
ग्याह हाँठों की गयीं कोरें,
छलकने आलोक से तर है:
प्रेत सी कारी डरारी देह,
है अभी तक अमृत से गीली ।

सुधा थी या मुरा ?
नस-नम में नशा भरपूर,
प्रेत सी कारी डरारी देह चकनाचूर:
लड़खड़ाते डगमगाते पैर
मुड़ी गेंठी मूँड़ सी बाँहे पड़ी टलीली ।
चाँद का प्याला कहीं उलटा पड़ा होगा,
बादलों ने चाँदनी पी ली ।



गाँव के गाँव

नीचे नीर का विस्तार
ऊपर बादलों का छाँव,
चल रही है नाव,
चल रही है नाव,
लहरों में छिपे हैं पाँव,
सचमुच मञ्जलियों से कहीं लहरों में छिपे हैं पाँव ।
डाँड उठते आँर गिरते साथ,
फँस जाते दो सलौने हाथ;
टपकतीं बूँदे, बनातीं वृत्त,
पाँव जल में लान करते नृत्त:
फूल खिल जाते लहरियों पर,
घूमते घिर आसपास भँवर:
हवा से उभरा हुआ कुछ पाल,
शीश पर आँचल लिया है डाल:
दूर नदिया के किनारे गाँव,
जा रही केवट-वधु सी नाव ।
घुल गया होगा महावर,
छिपे लहरों में अभी तक—
मञ्जलियों की तरह चंचल पाँव ।



टूटती लहरें

ये जिन्दगी के रास्ते

ये जिन्दगी के रास्ते
केवल तुम्हारे वारते
मैं सोचता था एक दिन ।

केवल तुम्हारे स्नेह की अमराइयों में घूमकर
केवल तुम्हारे रूप की परछाइयों में झूमकर
केवल तुम्हारे वन की गहराइयों को चूमकर
मन बीत जायेगा उमर,
मैं सोचता था एक दिन ।

केवल तुम्हारे रिनग्ध केशों की निशाओं पर लहर
केवल तुम्हारी दृष्टि से धूलता दिशाओं में उठकर
केवल तुम्हारी गोद में हाग-थका सा शाश भर
कट जायगा माग सफर,
मैं सोचता था एक दिन ।

विश्वास था निश्चय तुम्हारी बाहुओं में छूटकर,
यह देह जायेगा मुग्ध, यह प्राण जायेगे विग्वर
विश्वास था तुमसे अलग होना ज़हर हो जायगा
खोया तुम्हें तो जिन्दगी का मत्स्य भी खो जायगा
पर आज यह सब झूट है,
तब झूट था अब झूट है,

टूटती लहरें

तुम दूर हो, वह रनेह की अमराइयाँ भी दूर हैं ।
परन्धाइयाँ भी दूर हैं, गहराइयाँ भी दूर हैं ।
साँमें तुम्हारी दूर है, बाँहें तुम्हारी दूर हैं ।
भाँजल तुम्हारी दूर है, राहें तुम्हारी दूर हैं ।
तुम तो नहीं पर मौत का तख्तार मेरे साथ है ।
हर चाह को बाँधे हुए तकदीर मेरे साथ है ।
फिर भी अभी मैं जी रहा ।
ये ही नहीं मैं सोच आगे और जान की रहा ।

अब देखता हूँ ज़िन्दगी यह प्यार से ज़्यादा बड़ी ।
दो लोचनो का अश्रुमय मनुहार से ज़्यादा बड़ी ।
इसमें हजारों मील लाखों मील रेगिस्तान हैं ।
फिर भी किसी उम्मीदपर चलता यहाँ इंसान है ।
उम्मीद वह जो साथ रहने तक नहीं सीमित यहाँ ।
हर व्यक्ति केवल प्यार पाकर ही नहीं जीवित यहाँ ।

हारा थका सा शाश, पत्थर पर, किसी तरु-झाँह में,
रख कर ज़रा सा देर चलना है भरन की राह में ।
यह ज़िन्दगी का सत्य सच मानो कि तुम से भी बड़ा ।
इस तक पहुँचने को मनुज होता रहा गिरगिर खड़ा ।
इस सत्य के आगे मुरझना और खिलना एक है ।
इस सत्य के आगे विच्छुड़ना और मिलना एक है ।
इस सत्य के आगे सभी धरती हृदय का पात्र है,
मेरा तुम्हारा रनेह इस पथ का इकाई मात्र है ।

माना हमारे रनेह में कोई कर्मा होगा नहीं,
माना हमारे दीप का कम रोशनी होगी नहीं,
लोकन किसी भी रोशनी को बाँध लेना पाप है ।
आने हृदय का रनेह दुनिया को न देना पाप है ।

जो धूल-कण आये हमारी राह में सोना बने ।
अपना पराया अब न हों कोई हमारे सामने ।
तुमने दिया सर्वशुभ मुझ से भी ज़रा सा दान लो ।
इस सत्य को मैं चाहता हूँ आज तुम भी मान लो ।
मानो न मानो तुम सही,
पर सोचता हूँ मैं यहाँ,
ये जिन्दगी के रास्ते ।
सारी धरा के वारते ।



सच हम नहीं सच तुम नहीं

भच हम नहीं सच तुम नहीं ।
सच है सतत संघर्ष ही ।
संघर्ष से हट कर जिये तो क्या जिये हम या कि तुम ।
जो नत हुआ वह मृत हुआ जो वृत्त से फर कर कुसुम ।
जो पन्थ भूल रुका नहीं ,
जो हार देख झुका नहीं ,
जिसने मरण को भी लिया ही जीत है जीवन वही ।
सच हम नहीं सच तुम नहीं ।

पंसा करो जिससे न प्राणों में कहीं जड़ता रहे ।
जो है जहाँ चूपचाप अपने आप से लड़ता रहे ।
जो भी परिस्थितियाँ मिलें ,
काँटे चुभे, कालियाँ खिले ,
दृष्टे नहीं इन्सान, वम संदेश याँवन का यहाँ ।
सच हम नहीं सच तुम नहीं !

हमने रचा आँसू हमी अब तोड़ दें इस प्यार को ।
यह क्या मिलन, मिलना वही जो मोड़ दे भँभधार को ।
जो साथ कूलों के चले ,
जो ढाल पाते ही ढले ,
ह जिन्दगी क्या जिन्दगी जो सिर्फ पानी सी वही ।
सच हम नहीं सच तुम नहीं ।

सच हम नहीं सच तुम नहीं

अपने हृदय का सत्य अपने आप हम को खोजना ।
अपने नयन का नीर अपने आप हम को पोढ़ना ।
आकाश सुख देगा नहीं ,
धरती पसंजी है कहीं !
हर एक राही को भटक कर ही दिशा मिलता रहीं ।
सच हम नहीं सच तुम नहीं ।

बेकार है मुरकान से ढकना हृदय का खिन्नता ।
आर्द्रश हो सकते नहीं तन और मन की भिन्नता ।
जब तक वंधा है चेतना ,
जब तक प्रणय दुख से घना ,
तब तक न मानूँगा कर्मा इस गह को ही मैं सही ।
सच हम नहीं सच तुम नहीं ।



लोग कहते हैं-

लोग कहते हैं कि तुमसे दूर हैं अब जो,
जिन्दगी भर वह तुम्हारा रह नहीं सकता ।
भूट है यह बात या कुछ सत्य है इसमें ।
तुम्हीं चोली में ग्वथं कुछ कह नहीं सकता ।

जानता हूँ सिर्फ इतना ही कि अनचाहे,
अनकहे अनजान सहसा पेँठती बाँहें ।
बैठ जाता मन, घुमड़ आते घने बादल,
डूब जाती साँस कुछ इतना वरसता जल ।

मचलते आंसू लिपट कर साथ बहने का ।
किस तरह कह दूँ कि मैं अब वह नहीं सकता ।
आँर मैं इसके भिवा कुछ कह नहीं सकता ।

भले पूजा-मूर्ति चकनाचूर हो जाये,
भले अपनी छाँह तन से दूर हो जाये ।
देह गल जाये, नसों में आग लग जाये,
भले अपने पर रवयं सन्देह जग जाये ।

धड़कनों में, श्वास में, प्रश्वास में, लेकिन—
एक दृढ़ विश्वास है जो ढह नहीं सकता ।
आँर मैं इसके भिवा कुछ कह नहीं सकता ।

जिन्दगी है तो कहीं पर प्यार है निश्चय,
वृत्त है तो बिन्दु का आधार है निश्चय ।
चोट सहने को खुली इन्सान की ज्ञाती,
क्योंकि उसमें है किसी के रनेह की थाती ।

हर तरह आराम से हूँ पर कहीं रह-रह —
दर्द होता है जिसे मैं सह नहीं सकता ।
आर मैं इसके सिवा कुछ कह नहीं सकता



इस वार

इस वार दिवाली ब्रात गयी मृनी मृनी,
इस वार प्रदापो ने मुझमे वृद्ध नहीं कहा ।
इस वार मुझे अधियारी लगी नहीं दूनी,
तारे टूटे पर नीर नयन से नहीं बहा ।

छू सकी न कोई ज्योति हृदय की धड़कन को,
मिठी के हर दांपक में थी पत्थर की लौ ।
वया जाने क्या इस वार हुआ मंगे मन को,
एक भा किरन दे सके नहीं दीपक सां सां ।



गीत

कभी कभी सुखमय जीवन भी बन जाता है भार ।

सहसा मन में जग उठती है दुख सहने का साध ।
नहीं चाहता पाना मन ही निज निधि को निर्वाध ।
कभी नष्ट होकर आशाएँ देता है सन्तोष,
कभी कभी प्यारा लगता है साँस तोड़ता प्यार ।
कभी कभी सुखमय जीवन भी बन जाता है भार ।

एक विजय के बाद दूसरी, यह क्रम है रस हीन
मुसकानों में घुटकर मर जाते हैं अश्रु नवान
कभी विजेता बनने में भी होता है संकोच,
कभी कभी अपने को भारता है अपना ही हार ।
कभी कभी सुखमय जीवन भी बन जाता है भार ।

किसी समय मन कर उठता है मन से ही विद्रोह ।
चूर चूर होकर रह जाता है सब माया-मोह ।
कभी किसी का निर्ममता में भी मिलती है तृप्ति,
कभी कभी अच्छा लगने लगता है अत्याचार ।
कभी कभी सुखमय जीवन भी बन जाता है भार ।



दो मुक्तक

हर रिमाति-सरि के लिए अश्रु-सागर बहता है ।
क्षण भर की ही भूल युगों तक उर दहता है ।
एक फूल के आस पास शत-शत कंटक हैं ।
अंधकार में गुंथे हुए सारे तारक हैं ।
एक एक सुख-रश्मि को,
घेरे अमित विपाद है ।
नियम तिमिर ही है सदा,
रविशाशि सब अपवाद है ।

आहत, हतचेतन सर्मार विष भिये हुए हैं ।
तिमिर क्रूर मुंह दिशा-दिशा का भिये हुए हैं ।
दम घुटने से यहाँ पुण्य होता अर्जित है ।
लेना सुख की सांस पाप कह कर वर्जित है ।
यहाँ रुदन के लिए भी,
केवल मौन उपाधि है ।
नीले अंबर से ढकी,
धरती एक समाधि है ।



गीत

मैंने पुकारा फिर तुम्हे ।

आँसू दगों से दुल गये ।

बन्धन खरो के खुल गये ।

इस डूबती सी साँस ने—

समझा सहारा फिर तुम्हें ।

मैंने पुकारा फिर तुम्हें ।

अलकें शिथिल उलझी हुईं ।

पर दृष्टियाँ सुलझी हुईं ।

छिप चाँदनी के फूल में—

मैंने निशारा फिर तुम्हें ।

मैंने पुकारा फिर तुम्हें ।

उमड़ी. उठी, झिझकी, झुकी ।

लहर झलक पाकर रुकी ।

मैंझधार के आवेग ने—

माना किनारा फिर तुम्हें ।

मैंने पुकारा फिर तुम्हें ।



गीत

मधुरिमे ! फिर आज तुमसे माँगता हूँ शक्ति
कब हुआ निश्शेष अविनश्वर तुम्हारा दान,
किन्तु मानूँगा न मैं उसके लिये पहसान,
आज अपनापन समझ फिर फैलता है हाथ ,
सजल पलकें, उँगलियों के छोर पर अभिमान ।
याचना मेरी तुम्हारे प्यार की अभिव्यक्ति ।
मधुरिमे ! फिर आज तुमसे माँगता हूँ शक्ति ।

कब तुम्हारे द्वार से रीता फिरा यह हाथ ।
गोद में तुमने सम्हाला कब न झुकता माथ ।
कब न पागल चुम्बनों से भर दिये ये प्रान ,
कब नहीं ढुलका किये मन आँसुओं के साथ ।
कब न दूरी में विलख दूनी हुई अनुरक्ति ।
मधुरिमे ! फिर आज तुमसे माँगता हूँ शक्ति ।

तुम किरन बन कर तिरो नभ,चाँदनी से स्नात ।
चाँद में पाऊँ तुम्हे मैं मुग्ध सारी रात ।
फिर हृदय के स्वर हृदय में डूब कर घुल जाँय,
भीग जायें तरलता से दान की तरु पात ।
आसरा बन कर मधुर युग युग जिये आसक्ति ।
मधुरिमे ! फिर आज तुमसे माँगता हूँ शक्ति ।



अजानी छाँह

साथ में मेरे अजानी छाँह रहती है ।
चाहता हूँ जब उसे उन्माद से छूना, अचानक दूर हो जाती ।
और यदि उसकी मृदुलता को अछूता छोड़ दूँ तो क्रूर हो जाती ।
अगर केवल देखता ही रहूँ तो मन-प्राण में, भरपूर हो जाती ।
क्यों उसे मेरी बहुत परवाह रहती है ।
साथ में मेरे अजानी छाँह रहती है ।

बहक जाऊँ तो बिना बोले अजब आभास देकर टोक देती है ।
कूपथ पर पड़ जाय मन तो पागलो सी लिपट पग से रोक देती है ।
सब उसे तम समझते हैं किंतु वह मुझको मतलब आलोक देती है ।
एक मूर्त है कि रोके राह रहती है ।
साथ में मेरे अजानी छाँह रहती है ।

वह नहीं मौसल, महज आकार, लहगती हुई सी एक काया है ।
सत्य है मेरे लिए हाँ, दूसरों के वागते तो सिर्फ माया है ।
हैं उसी में बस रहा अस्तित्व मेरा जो असत है और छाया है ।
तन कैसे मेरा उसी की बाँह रहती है ।
साथ में मेरे अजानी छाँह रहती है ।



गोरी रात

व्योम-गंगा में आर्या बाढ़,
चाँद से टकरायी हिलकोर ।
इधर से सुधा उधर से दूध,
भीगने लगे गगन के छोर ।
दिशाओं में ढरका सब दूध,
धरा पर गयी सुधा सब फैल ।
हो गयी सहसा गोरी रात ,
धुल गया युगों युगों का मैल ।



गीत

क्षीर-सागर में नहाकर लौट आयी रात ।

दूध से भीगे अभी तक चाँदनी के गात ।

देह से चिपका वरफ सा श्वेत शीत दुःखल,

नखत - वेणी में रहे उलभे जुहा के फूल,

बह गये कुछ लहरियों के साथ दूर अकूल,

आर यह शशि—भेट कमला ने किया जलजात ।

क्षीर-सागर में नहाकर लौट आयी रात ।

ओस—गीलापन वसन का बन रहा ज्यों वृंद,

लग न जाय बयार द्वार रहीं दिशाएँ मूँद,

चाहती किरनें अभी दें कुन्तलो को गूँद,

काँपता तन—हिल रहा सुकुमार पुरइन पात ।

क्षीर-सागर में नहाकर लौट आयी रात !

व्योमगंगा की धुली सारी पहन चुपचाप,

कंचुकी में वद्ध यौवन पुण्य के संग पाप,

अधर पर र्मिर्मातरही प्राणो के पुलिन तक व्याप,

गगन के उर में सिमट करता लगन की बात ।

क्षीर-सागर में नहाकर लौट आयी रात ।

दूध से भीगे अभी तक चाँदनी के गात ।



गीत

यह चाँद ज्योति का कमल-फूल ।
तारक छितरें किजल्क जाल,
ज्योतना पराग की धवल-धूल ।
यह चाँद ज्योति का कमल-फूल ।
उर का कलंक काला भँवरा ।
कन-कन में अमृत मरंद भरा ।
रस की वृद्धों में सनी पाँख ।
उन्मद मदमाती मँदो आँख ।
मूर्च्छित चुम्बन-श्लथ विसुध गात,
बेबस उड़ना तक गया भूल ।
यह चाँद ज्योति का कमल-फूल ।
नभ-सर में उठती विभालहर ।
जाते मुकुलित दल छहर-छहर ।
बहता सुगंध मधु-मुग्ध पवन ।
खिल उठता निशि का पंकज-वन ।
भर भर भर सब दल भरें, धरा—
पहने पाँखुरियों का दुकूल ।
यह चाँद ज्योति का कमल-फूल ।
वल खा जाती बाँहें-मृणाल ।
तिर तिर जाते लोचन-मराल ।
बादल पुरइन के हरित पात ।
कँप-कँप उठते हिम विदु रनात ।
धड़कन के पावों में कोमल,
चुभ-चुभ जाते घन-किरन-शूल ।
यह चाँद ज्योति का कमल-फूल ।



गीत

यह रूपहली छाँहवाली बेल ।
कसमसाते पाश में बांधे हुए आकाश,
तिमिर-तरु की रयाह शाखों पर खिले,
नखत-नुसुमों से रहीं हैं खेल ।
यह रूपहली छाँह वाली बेल ।

रश्मियों के वे सुकोमल तार,
लहराता गगन से भूमि तक
जिनके रजत आलोक का विरतार,
उलझे रात के हर पात से सुकुमार ।

इस धवल आकाश-लतिका में,
झूलता सोलह पंगुरियों का अमृतमय फूल,
गंध से जिसका दिशाएँ अंध,
खोजती फिरती अजाने मूल से सम्बंध ।
वल्लरी निर्मूल —
फिर भी विकसता है फूल

है रहस्य भरा हृदय से हर हृदय का मेल ।
हर जगह छायी हुई है,
यह रूपहली छाँहवाली बेल ।



गीत

तुम्हारे चाँदनी रही भूल,

उन्मत्त चाँद की बाँहों में ।
उर पर लहरें काले कुंतल ।
ज्यों उमड़ चली यमुना की लहरें,
डूब गये दो ताजमहल ।
पुलकित सपनों का चहल-पहल ।

करने मोलापन गयी भूल,

तम सघन कुंज की छाँहों में ।
नत पलकों में अधमूँदे भँवर ।
ज्यों खोल रहे धीरे धरे
घन वरुनिजाल में उलभे पर ।
शामें सुनती साँसों के स्वर ।

खिंच गया लाज का श्लथ दुकूल,

अनगिन अनबोली चाहों में ।



गीत

इस समीरन में मिली होगी तुम्हारी साँस भी

उर्मियों का प्यार पाकर झूमने वाले भूकोरे
छू रहे होंगे तुम्हारे ज्वारवाही अंग गंगे ।
देख शशि को आरही होगी तुम्हें भी याद मेरी,
चाँदनी फैली हुई होगी तुम्हारे पाम भी ।
इस समीरन में मिली होगी तुम्हारी साँस भी ।

ये रुई के पहल से हलके धवल बादल विचार ।
जा रहे प्रतिपल तृपाकृत स्वर्ग-सगिता के किनारे ।
ये विरल छिटके नखत, ये दृघ झलकती दिशाएँ,
छा रहा होगा तुम्हें यह ग्वप्न मा आकाश भी ।
इस समीरन में मिली होगी तुम्हारी साँस भी ।

एक सृनापन पलक के छोर पर दो वृंद जन्मकन ।
हृदय की कातर पुकारें पर की लाचार छलकन ।
जिस तरह हर दूब की आंग्ने भरी सी हैं यहाँ पर,
ठीक वैसे ही सजल होगी वहाँ की घास भी ।
इस समीरन में मिली होगी तुम्हारी साँस भी ।



गीत

यह चंदन सा चाँद महकता, यह चाँदी सी रात ।
व्यों नयनों से रूप कह रहा—सुनो हमारी बात ।

भुकते पलक कि दूर क्षितिज तक छा जाता तम-तोम ।
खुलते नयन कि फिर आभा से लहरा उठता व्योम ।
अधरों पर मुसकान कि पर खोले हंसों की पाँत ।

व्यों नयनों से रूप कह रहा-सुनो हमारी बात ।

हिलती अलक कि कँप उठती तम के पंथी की राह ।
वेणी खुली कि शंफाली की नत डाली की छाँह ।
साँसें जातीं भीग कि लाती पुरवाई बरसात ।

यह चंदन सा चाँद महकता, यह चाँदी सी रात ।

देह लहगती या कि लहर को देता पवन भ्रकोर ।
अविरल बोल कि जल में वर्षा की बूँदों का शोर ।
शरमीलें से गात कि जैसे छुईमुई के पात ।

सुनो हमारी बात ।

यह चाँदी सी रात ।



गाँव

वह रात अमर ।
आलोक-तरल नभ,
रश्मि-खचित लहराना वासव का
दुकूल ।

छितरे तारक,
अधखुली शची की बेणी के
अधखिले फूल ।
छवि सघन कुंज,
भोले-भाले तरु खड़े रवग के प्रहरी से ।

पेरावत के कानो जैसे,
हिलते कदली के पात
अमर ।

वह रात अमर ।

तम का अलकों को विश्वास कर
वह चली
भुरहरे की बतास;
निशि के अधरों पर
उत्तर रहा
अधजगे प्रात का सहज हास ।

दूधती लहरें

मुँद जाते दोनों हृग
अनन्त सपनों का सौरभ भार लिये ।
आभा की किरनों से
छूकर,
खिलते सुधि के जलजात
अमर ।
वह रात अमर ।



चाँदनी और चाँद

रच दिया पथ ज्योति के आवर्तनों से चाँद ने।
रात की बेणी किरन की उँगलियों से खोलकर
वाँध अपने को लिया अनागत घनों से चाँद ने।

‘याद है वह नीचुओं की साँवली झाया घनी?’
ओस की सुकुमार बूँदों से भरी पलकें उटा,
आसमाना चाँद से कहती कपूरा चाँदनी।



—आओ!

याद पिछली चाँदनी राते करें आओ !
अनकहे स्वीकार संगार्ते करें, आओ !
भोर होते ज़िन्दगी से जूझना होगा,
रात है, कुछ प्यार की बातें करें, आओ !



जुन्हाई

तरुनाई सी खिली जुन्हाई,
घुले पुलक से प्रान ।
किसने चूमा चाँद कि मुख से,
मिटते नही निशान ।
किरन किरन से रूप बरसता,
नखत नखत से प्यार ।
डूबा जाता गगन ज्योति की,
लहरों में सुकुमार ।
पीपल का हर पात चमकता,
जैसे जल मे सीप ।
देह देह से दूर प्रान के,
फिर भी प्रान समीप ।



दो वर्षा-गाँव

बादल घिर आये री चीर !
फिर फिर आये,
घिर घिर छाये,
गरज तरज गंभीर
बादल घिर आये री चीर !
नैना रोये,
अंसू वोये,
तभी गगन से फूट धरा पर.
बरसा इतना नीर ।
डगमग नैया,
फिर पुरवैया—
पाल समझ कर लिये जा रही
स्वीचे मेरा चीर ।

घेर आये घन ।
पागती काजल दिशाएँ ।
दिवस पर छाये निशाएँ ।
कौन लाया स्वीच,
काले बादलों के बीच,
मेरा मन ?
थिगकती पागल बिजलियाँ ।
फूटती ज्यों खरकलियाँ ।
विखरते नग-हीर,
भरता नूपुरों से नीर,
सोना बन ।



दामिनी

दामिनी !

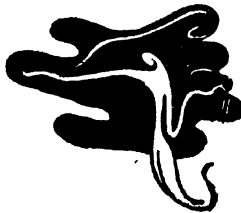
किन्तु प्रियके मजल श्यामल
पंथ का अगुगामिनी
लाल मेंहदी से रचे कर,
युगल पग परित महावर,
इन्द्रधनुषी मौर भपित
जलद की सहगामिनी !

दामिनी !

नृपुरों में वृंद के ग्वर,
किंकरणी से ध्वनित अंबर,
थिरकती फिरती क्षीनज के
छोर तक अविरामिनी !

दामिनी ।

सुरमई वादल-कलश भर
ढालती प्यासी धरणि पर,
गगनचारी, सलिल-बाला,
प्रिय-मिलन-संग-मिनी !
मदगा-रंजित दामिनी !



तुम्हारा साथ

कोई अनपहचाने स्वर में,
जाने कितनी बार कह चुका—
छूट रहा है हाथ तुम्हारा,
पर जीवन के नये मोड़ पर
नया तरह से
मुझे मिल रहा साथ तुम्हारा ।

जहाँ कहीं भी बिना सहारे,
जितने भी लड़ लड़ कर हारे,
अपनी ही गति के आरोही,
पथ पर जितने थके बटोही,
जिन्हें न तिल भर छाँह मिली है,
चूम चूम कर पी लेने को जिनके आँसू,
कभी न कोई कली खिली है,
जो अतृप्त है, जो अशक्त हैं,
जो अपने मन की छितरायी अभिलाषाओं में विभक्त है ।
वे भी जिनके पाँव आज तक
रहे पंथ से सदा अपरिचित ।
वे भी जिनके हाथ आज तक
हुए कर्म में सदा विकम्पित ।
जिनकी पलकों के नीचे ही जाने कितने स्वप्न मर गये ।
जिनकी अलकों में भ्रंशा के झोंके कितनी धूल भर गये ।

आज मुझे लगता है जैसे
इन सब हारों, लाचारों पर —
अंधकार से लड़ने वाले इन अनगिन नखतों तारों पर —
फैल रहा है हाथ तुम्हारा;

अपना आँसु से भीगा आँचल फैलाता,
छाया करता, थकी देह उनकी सहलाता,
मन की सारी ममता करुणा सहज लुटाता,
कल्पवृक्ष के नवल पात सा
फैल रहा है हाथ तुम्हारा ।

अब न कभी छूटेगा मुझसे साथ तुम्हारा



टूटती लहरें

झहर-झहर टूटती, उहर-उहर टूटती ।

टूट रहे सागर की लहर-लहर टूटती ।

अंधियारा उतर रहा सपनों के गांव में,

रेतीला सूनामन पलकों की छाँव में,

पत्थर ज्या बंधे हुए नजरों के पाँव में,

यों मुझको देखो मत,

नीर भरी आँखों में एक लहर टूटती ।

दर्द भरे सागर की लहर-लहर टूटती ।

लगता है सारा अस्तित्व किसी झूठ पर,

टिका हुआ, जाता है आप ही विश्वर-विश्वर,

केवल रव अर्थहीन, साँसों का क्षीण स्वर,

यों मुझसे पृच्छो मत,

पीर भरे प्राणों में एक लहर टूटती ।

दर्द भरे सागर की लहर-लहर टूटती ।

परिचित संरपर्शों में ताँखा अभिशाप है,

अजगर सा आत्मा को कसे हुए पाप है,

लोहू में जलता विष, नम-नम में ताप है,

यो मुझको बाँधो मत,

टीस भरे अंगों में एक लहर टूटती ।

दर्द भरे सागर की लहर-लहर टूटती ।



